ISSN: 2349-4905
अंक-25, जनवरी-जून, 2022

आज़ादी का अमृत महोत्सव

हिमांजलि

हिन्दी माध्यम में उच्च स्तरीय अनुसन्धान के लिए
समर्पित भारतीय उच्च अध्यय संस्थान,
शिमला की अर्धवार्षिक पत्रिका

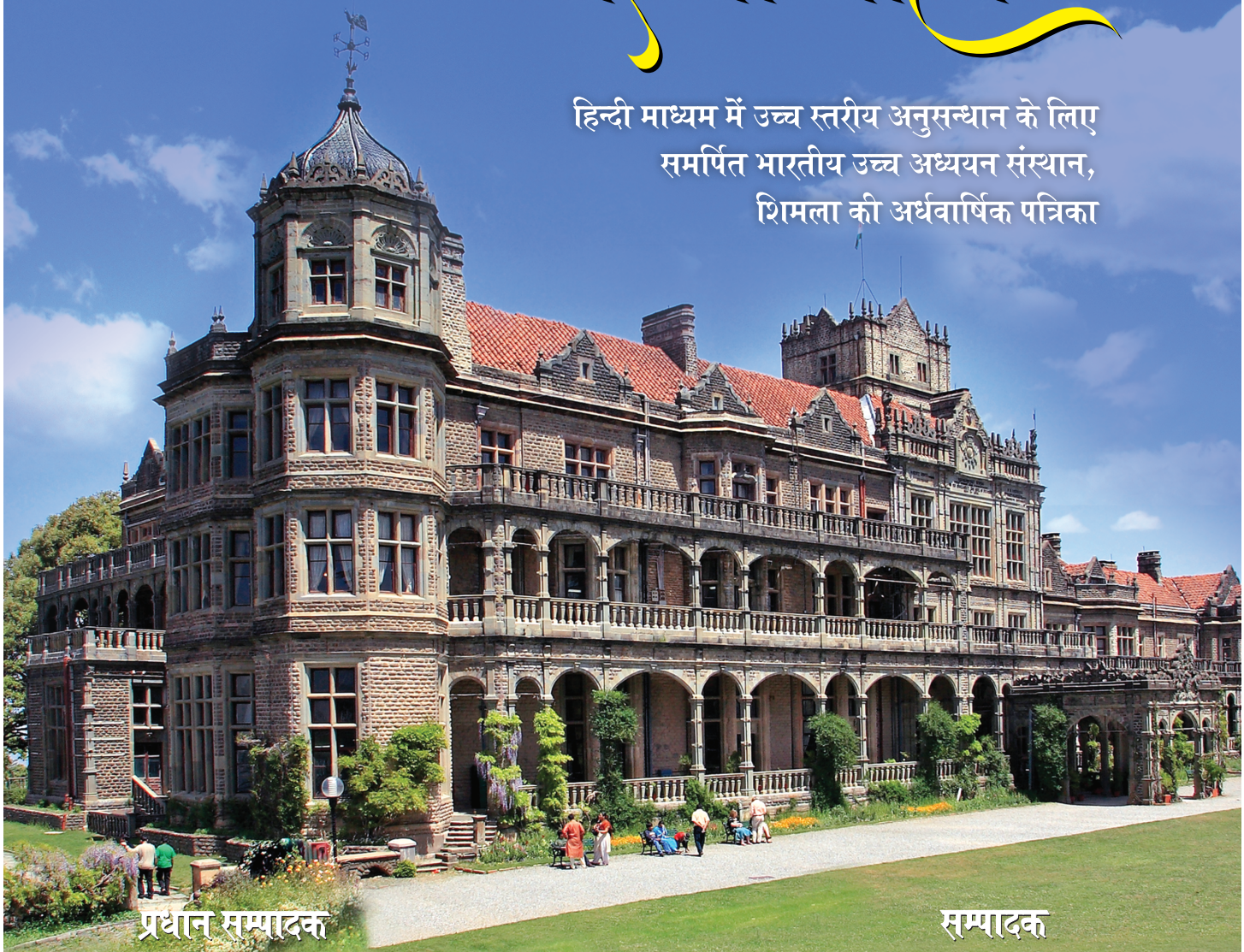

प्रधान सम्पादक
नागेश्वर राव

सम्पादक
बलराम शुक्ल

ISSN : 2349-4905

हिमांजलि

हिन्दी माध्यम में उच्च स्तरीय अनुसन्धान के लिए समर्पित
भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला की
अर्धवार्षिक पत्रिका

अंक-25, जनवरी-जून, 2022

अनुक्रम

पुरोवाक् 3
नागेश्वर राव, निदेशक

सम्पादकीय 3
बलराम शुक्ल

संस्कृति तथा समाज

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थचतुष्टय 6
शशिप्रभा कुमार

भारतीय चिन्तन परम्परा में योगिनी 12
सर्वेश त्रिपाठी

गीता के अनुसार मुक्ति का मार्ग 16
तनुजा रावल

सन्थालों का लोकतन्त्र 24
रवि रंजन

साहित्य तथा भाषा

स्वतन्त्रता संग्राम के निर्भीक संस्कृत पत्रकार अप्पाशास्त्री राशिवडेकर 28
रमाकान्त पाण्डेय

सुमित्रानन्दन पन्त की काव्यकला : काव्यशास्त्रीय अन्वेषण 32
ब्रजरतन जोशी

संस्कृत एवं प्राकृत की परस्पर उपग्राहिता 38
गणेश तिवारी

जर्मन विद्वानों की संस्कृत अध्ययन के प्रति इतिहासमूलक दृष्टि 45
वशिष्ठ बहुगुणा

प्रधान सम्पादक
नागेश्वर राव
निदेशक, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान, शिमला

सम्पादक
बलराम शुक्ल
पूर्व अध्येता

संयोजक
राजेश कुमार
हिन्दी अनुवादक

प्रकाशक
सचिव, भारतीय उच्च अध्ययन संस्थान
राष्ट्रपति निवास, शिमला-171005
दूरभाष : 0177-2831379
फैक्स : 0177-2830628
वेबसाइट : www.iias.ac.in

सह-प्रकाशक
वाणी प्रकाशन
4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110 002
फ़ोन : +91 11 23273167, 23275710
वेबसाइट : www.vaniprakashan.com

मुद्रक
आर. टेक ऑफ़सेट प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032 में मुद्रित

प्रकाशित रचनाओं, लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के स्वयं के हैं, उनसे संस्थान व सम्पादक मण्डल का सहमत या असहमत होना आवश्यक नहीं है।

सन्थालों का लोकतन्त्र

रवि रंजन[*]

हम मनुष्यों में एक बड़ी कमज़ोरी है—हम जो देखते हैं उसे हज़ार-गुना बढ़ाकर सोचने लगते हैं। जो कुछ भी हम देखते हैं, हमारा दिमाग़ उसको उसी रूप में ग्रहण कर लेता है, बल्कि उसके एक सहस्र-गुना स्वरूप हमारी स्मृति पथ पर मँडराने लगती है। यद्यपि हम जानते हैं कि इस प्रकार सोचने से हानि भी हो सकती है और होती है, किन्तु हम अपने सोचने की यह अज़ीब आदत नहीं छोड़ते। तो सोचना और आगे-पीछे की सारी बीती और आने वाली बातों को एक साथ ही सोच लेना हमारी मानवीय आदत में घुल-मिल गयी है। अपने चारों ओर हम दिन-रात देखते रहते हैं और देखा करते हैं कि जीवन में इतना अन्धकार, इतना संघर्ष और इतनी अपूर्णता क्यों है! हम मानो इसकी कल्पना से दबे हुए रहते हैं। हम डर जाते हैं और सहायता के लिए इधर-उधर देखने लगते हैं। तब हमें 'लोक साहित्य' की जीवन-धुन और उसके राग वैभव सान्त्वना देने का कार्य करती दिखाई देती हैं। यह मैं अपने पिछले दस-चौदह वर्ष के व्यक्तिगत अनुभव से कह रहा हूँ।

'ने दिसुम इसु सुघड़ हरियर नेलोः तना।'

सन्थालों का लोकतन्त्र या लोकजीवन जो भी कह लें, सबको इस एक पंक्ति मात्र में इतने मार्मिक और हृदयस्पर्शी ढंग से अभिव्यक्त करता कोई दूसरा लोकधुन कहीं नहीं मिलेगा। इसका अर्थ कुछ यूँ होगाः 'यह देश जितना सुन्दर है और उतना ही हरा-भरा।' निश्चित ही सन्थालों के मुख से यह शब्द उनके इस धरती पर यानी इस भौगोलिक चौहद्दी पर पैर रखते हुए निकला होगा। जब उन्हें कैमूर, नालन्दा, गया आदि की पहाड़ियों से तथाकथित सभ्य जातियों द्वारा खदेड़ा गया होगा। वे अपने घर की खोज़ में इन पहाड़ियों में 'सन्थाल लोकतन्त्र' का निर्माण किये होंगे। बेशक़, यहाँ पर सन्थालों की इस जिजीविषा के लिए मुझे दुष्यन्त कुमार की यह पंक्ति याद आने लगी। मैं इंकार नहीं कर सकता। दुष्यंत कहते हैं न,

''न हो कमीज़ तो घुटनों से पेट ढक लेंगे,
ये लोग कितने मुनासिब हैं इस सफ़र के लिए।''

दुर्भाग्य के दिनों में भी सुन्दरता की फ़िक्र करना निश्चित तौर से लोकसंस्कृति की रक्षा से कहीं ज्यादा, लोकचेतना और उसके जातीय निर्माण की बलवती जिजीविषा है। सन्थालों के यहाँ आने पर उन्हें यह भूभाग खाली मिला होगा। घने जंगलों और पहाड़ों से हरा-भरा यह क्षेत्र उन्हें मनोहारी लगा। महुआ, साल और पलाश के फूलों से गुलज़ार यह धरती शायद उनकी ही बाट जोह रही थी। महुआ के फूल की महक उन्हें नाचने को उद्दत कर रही थी तो साल के फूल उन्हें गीत की राग छेड़ने को उकसा रहे थे। वहीं पलाश के आकर्षक फूल उनमें 'चेतना की आग' पैदा कर रहे थे। पलाश को 'जंगल की आग' भी इसी लोमहर्षक और प्रकाशमय चेतना के कारण ही कहा जाने लगा। शायद यही कारण रहा हो इसके पीछे! कालान्तर में सभ्य लोगों के पर्व होली के रंग इसके फूलों से तैयार किये जाने लगे और जंगल का यह आग का रंग फाग में बदल गया।

सन्थालों की बनायी हुई, खुद से सहेजी हुई यह धरती वाकई बहुत ख़ूबसूरत है। ऐसा लगता है जैसे धरती और आसमान ने दोनों हाथों से हरियाली लुटायी है। पूरी ज़मीन एक हरी चादर की तरह दिखती है। पहाड़ से खेत और खेत से पहाड़ सब-के-सब हरे। खेतों में पहाड़ और पहाड़ पर खेती, यह देखना हो तो कहीं और जाने की ज़रूरत नहीं। आप सन्थालों के इस हरे भरे लोकतन्त्र में क़दम भरें, सबकुछ साफ़ दिख जायेगा। यहाँ की सुबह तो देखते ही बनती है। पर एक बात गौर करने की होगी कि यहाँ सुबह यूँ ही नहीं आती। बस फूलों को हँसने का मौक़ा चाहिए। धूप को खिलने की जगह चाहिए। लोगों को नाचने को खुला आसमान चाहिए। गाने को पूरा समाज चाहिए। सुबह कुछ ऐसे ही चमकती आती है सन्थाल घरों में। एक सन्थाली लोकगीत 'सेताक सिंगाड़' (सुबह-रात) में दो युगलों का वार्तालाप है जो प्रकृति के इस मनोहारी आगोश में सुबह की जगमगाती खुशबू से नहा लेना चाहते हों—जैसे :

"दे बेरेत् में दुलाड़िया! जापित एदाम तिनाक्?/ सेटेर एना सेताक्, सिंगाड़, बानुक जिन्दो बोतोर।/जेल ते भारसाल रासका, आड़ी जिउ जोतोको गे/एथेन एनको कुरती आड़ी, नावाँ आसरा ते गे।/तिनाक्रासकासेरेजको, चेंडे ओन्दोड़ चेहोर-बेहोर/सेटेर आकान जियोन, सेताक् रेयाक्क सेरेज नेहोर/साड़ बाहा पेरेच् कुसमी, जोबा, चाइली/आर हो बाहा नामा, रोकोम गुलाः चामेली बेली।/मोज बास ते पेरेच् एना, सेताक् रेयाक् होय/मुमिन सोहान ओक्ते रे, हों गितिच् कोक आय ओकोय!" (**अर्थ** : ऐ प्रिय! अब जग जाओ। अब कितना सोओगे? सुबह हो गयी है, अब अँधेरे से नहीं डरना। यह उजाला देखकर सभी प्राणियों में ख़ुशी आ गयी है। सभी जग गये हैं, अपने-अपने घर में। देखो चिड़ियों की गान, कितना सुन्दर गाती है ऐसे जैसे सामने जीवन आ गयी हो और वह जीवन का गीत गा-गाकर, सबको जगा रही है। फूल की क्यारियाँ खिल गयी हैं जिसमें जोबा, चाइली, गेंदा, चमेली और बेली के गुच्छ लहलहा रहे

*घाटशिला कॉलेज, घाटशिला (झारखण्ड) में हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक हैं।

JOURNAL OF EDUCATION: RABINDRA BHARATI UNIVERSITY
ISSN : 0972-7175

UNDERSTANDING THE APPROACHES TO POLITICAL THEORY: FOCUS ON HISTORICAL, NORMATIVE AND EMPIRICAL

Prof. Gyanaranjan Swain
School of Political Science, Gangadhar Meher University, Sambalpur, Odisha

Dr. Sanjeev Kumar
Associate Professor, Zakir Husain Delhi College, University of Delhi

Subhasandhya Sahoo
Research Scholar, School of Political Science, Gangadhar Meher University, Sambalpur, Odisha

ABSTRACT
Political theory is the core part of political science that emphasizes the aspects of describing and explaining political issues and behaviour. So, in the study of political science, we require specific approaches that help to find political truth and study the events. In political science, there are mainly two effective approaches: traditional and modern. From the ancient Greek political philosophy era, political philosophers and scientists have been directed to analyse and investigate various political issues and incidents from their perspectives. Henceforth, they have found conclusions and prescribed specific recommendations based on the study. This process is itself an ongoing way. It has brought the emergence of many approaches to studying and understanding the field of political science. Though normative and empirical approaches are two different parts of social science, both are somehow guided by each other. The present chapter discusses three fundamental approaches to studying political theory, mainly focussing on the historical, normative, and empirical approaches. Simultaneously, this chapter also gives a comprehensive knowledge of the different approaches to studying political theory.
Keywords: Approaches, Norms, Facts, Prescriptive and Past events

INTRODUCTION
Political theory, as an essential branch of political science, deals with the study of ideas related to the concepts of state, individual and their relationship with each other. So, it is difficult to identify various conceptions of political theory that different theorist uses. For this, different approaches emerge in political theory to understand, conceptualize and evaluate present and past theories. Henceforth, it is not limited to studying how the institution works but also to how it ought to work. The historical approach under the traditional approach insists on studying history to determine the future course of action. So, studying politics helps to gain knowledge about the functioning and the success and failure of government, political parties and various institutions.

In contrast, the normative approach is primarily philosophical that tries to explore values and interpreted events with the help of norms and moral standards. So, the normative approach is understood as the framework of philosophical speculation about values. It is prescriptive and based on 'what ought to be or should be'. This approach is reflected in the works of Leo Strauss. But the problem lies with this approach that ethical values are subjected to specific times and circumstances. Hence, it is quite challenging to provide absolute standards and values. Unlike the normative approach, the empirical approach believes in the scientific method. It has dominated political theory in the twentieth century and rejected value judgment. The empirical approach tries to provide value-free theory to make theory more scientific and objective. It has been pointed out that an empirical idea is a more reliable method to determine the future course of action. So, it has contributed a lot